शोध मंथन Vol. XII No.IV Oct.-Dec. 2021 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X
Available at: *http:/shodhmanthan.anubooks.com*

भारत मे मानवीय अधिकारों की परम्परा मुख्य चुनौतियां तथा समाधान

प्राप्तिः 27.10.2021
स्वीकृतः 26.12.2021

डॉ० निरंजन शर्मा
एसोसिऐट प्रोफेसर,राजनीति विज्ञान विभाग
पी०जी० कॉलेज, ऋषिकेश, देहरादून
ईमेलः *dr.niranjanasharma@gmail.com*

सारांश

मानव अधिकारों की व्यवस्था स्वयं में नया अविष्कार न होकर शताब्दियों के विकास का परिणाम है तथापि संयुक्त राष्ट्र चार्टर द्वारा इन्हें अन्तराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हुई है। यद्यपि चार्टर में मानव अधिकार सम्बन्धी पृथक घोषणा पत्र संलग्न नहीं किया गया किन्तु अनेक स्थानों पर मानव अधिकारों का स्पष्ट उल्लेख करके उन्हें महत्व प्रदान किया गया है। भारत मे 27 सितम्बर 1993 को अध्यादेश जारी किया गया जिसके द्वारा अधिकारों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग तथा मानवाधिकार न्यायालयों की स्थापना की गयी। अधिनियम में स्पष्ट है कि मानवाधिकार से अभिप्राय संविधान द्वारा प्रत्याभूत तथा अन्तराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सम्मिलित एवं भारत के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय व्यक्तियों के जीवन स्वतंत्रता तथा गरिमा मे है। प्राचीन सभ्यताओं एवं समाजों में मानव अधिकारों के आंशिक बीजो का अस्तित्व होते हुए भी व्यक्ति के अधिकारों को मान्यता प्राप्त नहीं थी क्योंकि व्यक्ति किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकते थे किन्तु भारतीय परम्परा में मूलतः कुछ अपवादों को छोड़कर जीवन्तता देखने को मिलती है, वेद की शिक्षायें इसका साक्ष्य है। अतः इसी जिज्ञासा को दृष्टिगत रखते हुए मैने इस विषय पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया है।

मुख्य बिन्दु

1. मानवाधिकार का संरक्षण
2. भारतीय परमपरा व संस्कषति में मानवाधिकार
3. मानवाधिकारों के मौलिक सिद्धान्त

मानव अधिकारों को मूल अधिकार, प्राकृतिक आधिकार, जन्मजात अधिकार, अहस्तान्तरणीय अधिकार, आधारभूत अधिकार आदि कई नामों से संबोधित किया जाता है, ये मनुष्य गरिमा एवं स्वतंत्रता में वृद्धि के साथ–साथ शारीरिक, नैतिक, सामाजिक एवं भौतिक कल्यांण की वृद्धि में भी सहायक होते हैं। स्थूल रूप से मानव अधिकार वह मौलिक तथा अन्य अधिकार हैं जो मुनष्यों के जीवन के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि वह मानव है चाहे वह किसी भी प्रजाति, राष्ट्रीयता, धर्म, लिंग को हो, मानव अधिकार प्रकृति में अन्तरनिहित है। मानवी अधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रताएं मानव के गुण, ज्ञान, प्रतिभा तथा अन्तर्विवेक का विकास करने में सहायक हैं, जिससे भौतिक, आध्यात्मिक तथा

अन्य आवश्यकताओं की पूर्ती हो सके। मानव समाज के इतिहास में अधिकारों की अवधारणा अत्यन्त प्राचीन है। विश्व के प्रत्येक मानव समाज में व्यक्ति की गरिमा तथा व्यक्ति एवं समाज के मध्य सम्बन्धें को परिभाषित करने का प्रयास अति प्राचीन काल से ही होता रहा है। मानव अधिकार के इसी महत्व का प्रतिपादन संयुक्त राष्ट्र की मानव मानव अधिकारों की उद्धेशिका में किया गया है जिसमे वर्णित है कि ''मानव परिवार के सभी सदस्यों की अन्तर्निहित गरिमा, सम्मान तथा अभेद अधिकार विश्व में स्वतंत्रता, न्याय व शान्ति के आधार है। मानवीय अधिकारों की अवधारणा कोई नवीन व्यवस्था नही है, वरन् यह शताब्दियों के विकास का प्रतिफल है। यद्यपि मानव अधिकार की अवधारणा को बीसवीं शताब्दी में विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है लेकिन इसके आंशिक बीज हमें प्राचीनकाल से ही देखने को मिलते हैं। प्राचीन विश्व इतिहास का अध्ययन करने से यह बात उजागर होती कि मानव अधिकारों का संरक्षण तत्कालीन कई राज्यों की विधियों में समुचित रूप से विहित था। बेबीलोनियन विधि असीरियन विधि हित्ती विधि तथा वैदिककालीन विधि इसके प्रमाण हैं। प्राचीन भारत में मनुष्य के मूलभूत हितों को महत्व दिया जाता था और राज्य का मुख्य कार्य इन हितों को संरक्षण प्रदान करना माना जाता था। इस सन्दर्भ में प्राचीन भारतीय विचारक कौटिल्य का कथन उल्लेखनीय है।

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानाञ्च हिते हितम्।
नात्मप्रियं सुखं राज्ञः प्रजानाञ्च सुखे सुखम्।

अर्थात् प्रजा के सुख में राजा का सुख है, प्रजा के हित में राजा का हित है। राजा के लिए प्रजा के सुख से भिन्न अपना कोई सुख नही है, प्रजा के सुख में ही उसका सुख है।

कलिंग अभिलेख में सम्राट अशोक के प्रजा को सन्तान की तरह माना है और अधिकारियों को जनता पर अत्याचार न करने की चेतावनी दी है। इस प्रकार प्राचीन भारत में प्रजा के हित को सर्वोपरि माना जाता था। इसी भावना से महाभारत के शान्तिपर्व में शासक के आचरण और राजत्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। पाश्चात्य जगत में मानव अधिकार की मूल जडें प्राचीन यूनान एवं रोमन साहित्य में खोजी जा सकती हैं। प्राचीन यूनान के सोफिस्ट विचारकों का चिन्तन मानवीयता से ओत–प्रोत था। उनका मानना था कि मनुष्य के अध्ययन का सर्वोत्तम विषय मनुष्य है। अतः मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाले शास्त्रों एवं विषयों का अध्ययन होना चाहिए। प्रसिद्ध सोफिस्ट विचारक प्रोटेगोरस कहा करता था कि **''मनुष्य सब वस्तुओं का मापदण्ड या मापक है, उन वस्तुओं का जो विद्यमान है तथा उन सभी वस्तुओं का भी जो नही हैं।''** इस प्रकार सोफिस्ट चिन्तन में व्यक्ति की गरिमा को बहुत महत्व दिया गया है। यूनानी विचारकों में प्लेटो (427 ई. पू.–348 ई. पू) ने नगर राज्यों से सम्बन्धित समस्त बुराइयों का निवारण करने के लिए दार्शनिक राजाओं के शासन का विचार प्रस्तुत किया था, जबकि सुप्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू (384 ई. पू.–322 ई. पू.) ने राज्य के वास्तविक उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि **''राज्य अच्छे जीवन के लिए अस्तित्व में आया है तथा अच्छे जीवन के लिए इसका अस्तित्व बना हुआ है।''** प्लेटो तथा अरस्तू के बाद यूनान के एपीक्यूरियन तथा स्टोइक विचारकों द्वारा भी मानवीय गरिमा को विशेष महत्व प्रदान किया गया। एपीक्यूरियन तथा स्टोइक मानवीय समानता तथा विश्व बन्धुत्व के विचार के प्रबल समर्थक थे। एपीक्यूरियन तथा स्टोइक विचारकों ने प्राकृतिक कानून का प्रतिपादन करके मानवीय अधिकारों की ही अप्रत्यक्ष रूप से व्याख्या की। उनका कहना था कि कोई भी सरकार या नियम निर्माता इस प्राकृतिक या सार्वभौमिक कानून का उल्लंघन नहीं कर सकता। पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा के

विकास में रोम का विशेष स्थान है। रोमन विचारक सिसरो ने प्राकृतिक कानून तथा सब मनुष्यों की प्राकृतिक समानता के सिद्धान्त का समर्थन किया। सिसरो का कहना था कि सब मनुष्यों की प्रकृति समान है और सबको प्रकृति ने सत्बुद्धि की शक्ति प्रदान की है। सिसरो ाक कहना था कि सब मनुष्य एक ही प्राकृतिक नियम के अनुसार शासित होते हैं। इस प्रकार रोमन युग के विचारकों ने राज्य के स्थान पर व्यक्ति को अपने कानूनी विचार का केन्द्र बनाया तथा राज्य की सत्ता का मुख्य प्रयोजन व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना बताया। रोमन युग के विचारकों का कहना था कि राज्य को सुनिश्चित सीमाओं के भीतर ही अपनी सता का प्रयोग करना चाहिए। उनका यह भी कहना था कि व्यक्ति के कुछ ऐसे अधिकार होते हैं जिनकी रक्षा अन्य व्यक्तियों तथा सरकार के अवैध अतिक्रमण से की जानी चाहिए। युनानी नगर राज्यों द्वारा अपने नागरिकों को भाषण की समान स्वतन्त्रता, कानून के समक्ष समानता, मताधिकार, सार्वजनिक संस्थाओं में निर्वाचित होने का अधिकार, व्यापार करने का अधिकार, न्याय प्राप्त करने का अधिकार आदि अधिकार, प्रदान किए गए। रोमन लोगों द्वारा भी इन स्वतन्त्रताओं की रक्षा अपने राष्ट्रीय कानून द्वारा की गयी। मध्ययुग में जहां राजाओं के दैवी अधिकारों के सिद्धान्त का सर्वाधिक बोलबाला रहा, वहीं दूसरी ओर जनता के भी कुछ अधिकार माने जाते थे। मध्य युग के कुछ राजनीतिक चिन्तकों पर इस रोमन विचार का भी प्रभाव पडा कि राजनीतिक सता का मूल स्रोत जनता है और प्रभु शक्ति जनता में निहित होता है। बाद में इसी विचार से जनता में निवास करने वाली प्रभुसता के विचार का विकास हुआ।

मानव अधिकार की अवधारणा के विकास में यूनानी, रोमन तथा मध्ययुगीन चिन्तन पर दषश्टिपात करने से ज्ञात होता है कि यद्यपि यूनानी तथा रोमन युग के चिन्तन ने इस अवधारणा के मूल बीजों के विकास में योगदान दिया तथापि प्रखर मौलिक चिन्तन होते हुए भी यूनान में वर्षो तक दास प्रथा जैसी मौलिक प्रथायें विद्यामान रहीं। यूनान के सोफिस्ट विचारक तथा अरस्तू जैसे विचारक इस प्रथा के दोशों से परिचित थे, लेकिन फिर भी वे इस प्रथा के समूलोन्मूलन के लिए खुलकर विचार प्रस्तुत नहीं कर पाये। मध्ययुग में राजाओं के दैवी अधिकारों के सिद्धान्त के प्रभाव के कारण कई देशों में प्रजाजनों के मूलभूत मानव अधिकारों का अतिक्रमण किया गया अथवा उन पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये गये। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति विश्व में सबसे प्राचीन है। इसकी सबसे बडी विशेषता यह है कि अति पुरातन होते हुए भी यह भारतीय परम्परा में जीवन्त बनी हुई है। भारतीय संस्कृति तथा दर्शन में वेदों का विशेष महत्व है। वेद विश्व का प्राचीनतम वाड.मय है। भारत की सनातन मान्यताओं के अनुसार वेद अपौरूषेय अथवा सर्वज्ञ स्वयं भगवान की लोकहिताय रचना है। वेद की शिक्षायें सार्वभौम हैं। वेद मानव मात्र को हिन्दू, सिख, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन आदि कुछ भी बनने के लिए नहीं कहते। वेद की स्पष्ट आज्ञा हैं– 'मनुर्भव' अर्थात् मनुष्य बनो। सैकडों वैदिक मन्त्रों में भगवान का विराट और परम पुरूष के रूप में चित्रण किया गया है–

सहस्त्रशीर्षा पुरूषः सहस्ताक्षः सहस्त्रपात्।
स भूमिं सर्वत स्पृत्वाऽत्यटिष्ठ द्दशाङ्गुलम्।।

इस विश्व के असंख्य प्राणियों के असंख्य सिर, ऑख और उस विराट पुरूष के ही सिर आंख तथा पैर हैं। विश्व में सर्वत्र परिपूर्ण और सभी शरीरों में प्राणिमात्र के हृदेयदेश में विराजमान वे पुरूष निखिल ब्रह्माण्ड को सब ओर से घेरकर दृश्य प्रपञ्च से बाहर भी सर्वत्र व्याप्त हैं।

इस प्रकार वेदों में मानवधर्म का विवेचन किया गया है। समस्त शास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत आदि जो भी शास्त्र बाद में लिखे गये, उनका मूल आधार भी वेद ही है। उनमें धर्म की जो व्याख्या की गई, उनका आधार भी वेद ही है। क्योकि इन शास्त्रों में 'वेदोऽखिलो धर्म मूलम' के आधार पर वेद का धर्म के मूल रूप में आख्यान किया गया है। किन्तु भारतीय वाड.मय में प्रतिपादित धर्म शब्द का अभिप्राय वर्तमान समय में प्रचलित धर्म शब्द के अर्थ से भिन्न है। **आज 'धर्म' शब्द दल, सम्प्रदाय, फिरका, पंथ आदि के लिये प्रयुक्त होने लगा है जैसे– हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म, मुस्लिम धर्म, यहूदी धर्म आदि।** भारतीय वाड्.यम की दृष्टि से यह धर्म का संकुचित एवं संकीर्ण प्रयोग है। 'धृञ् धारणे' धातु से धर्म शब्द की निष्पत्ति होती है। 'धृञ्' धर्म का अर्थ है धारण करना। इसी धातु से 'धर्म' शब्द बना है। अतः धर्म का अर्थ है धारण करने वाला। (धार्यत् इति धर्मः) वैशेषिक दर्शन के अनुसार– ''यतोऽभ्युदयनिः श्रेयस सिद्धि स धर्मः अर्थात् जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है। दूसरे शब्दों में जिससे इस लोक में उन्नति हो तथा परलोक में कल्याण हो, वह धर्म है। प्राचीन वैदिक वाड़ मय मे प्रतिपादित धर्म को सनातन धर्म कहा गया है। यह सनातन धर्म सर्वभौम मानव धर्मो में धर्म है। इसमे मानव मात्र के कल्याण की कमाना की गयी है। यथा –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद दुख भाग भवेत।।

सनातन धर्म 'वसुधैव कुटुम्बकम्' सारी वसुधा ही कुटुम्ब है के आदर्श को लेकर चलता है। एक ही परमात्मा के पुत्र होने से ज्येष्ठ–कनिष्ठ के समान सभी मानव एक ही परिवार के सदस्य हैं। भारतीय शास्त्रों में प्रतिपादित धर्म वास्तव में कल्याणकारी धर्म है।

यद्यपि मानव अधिकारों की आधुनिक संकल्पना के मौलिक सिद्धान्तों का विकास पश्चिमी देशों में हुआ है लेकिन मानव अधिकारों की आधुनिक संकल्पना के मूलभूत सिद्धान्तों की जडें प्राचीन भारतीय धर्म और दर्शन में देखी जा सकती है। मानवीय अधिकारों की आधुनिक संकल्पना में व्यक्ति की गरिमा और सम्मान को विशेष महत्व दिया गया है और उसके कुछ ऐसे मूलभूत अधिकार माने गये है, जिनके बिना उसका विकास सम्भव नहीं है। प्राचीन भारतीय धर्म में भी सभी प्राणियों में ईश्वर का अस्तित्व मानते हुये सबके कल्याण की कामना की गई है। वेदों में प्रतिपादित मानव धर्म मानव अधिकारों की आधुनिक धारणा का ही पोषण करता है। क्योंकि यह सबके कल्याण की कामना करता है। इस प्रकार वैदिक वाड.मय एवं प्राचीन भारतीय धार्मिक मान्यताओं में मानवीय अधिकारों की संकल्पना की मूल भावना विद्यमान है। विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में प्रमाण इसकी पुष्टि करते हैं। वैदिक धर्म के समान जैन धर्म में भी मानवीय अधिकारों की मूलभूत अवधारणा को सम्पुष्ट किया। जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थकर महावीर स्वामी थे। महावीर ने अहिंसा के सिद्धान्त पर सबसे अधिक जोर दिया। उनका उपदेश था कि जीव हिंसा मत करों, न ऐसे किसी काम से सरोकर रखों, जिससे जीव हिंसा होती। बौद्ध धर्म के प्रवर्त्तक भगवान बुद्ध के उपदेशों से भी मानवीय अधिकारों की आधारभूत अवधारणा को बल मिला। बुद्ध का कहना था कि झूठ बोलना, चुगली करना और कडी बात बोलना धर्म नही, अधर्म है। किसी प्राणी की हिंसा करना, दूसरों का धन हर लेना और अपने सुख के लिये दूसरों को दुख में डालना पाप है। बुद्ध किसी दूसरे धर्म को नीची नजर से नहीं देखते थे। वे अच्छे कर्म और विचार को उंचा मानते थे, ब्राह्मण या क्षत्रिय वंश में जन्म को नही। उनका विश्वास था कि जन्म से सभी समान है, कर्म से ही कोई उंच और कोई नीच होता है। महावीर और बुद्ध ने भारत के

समाज को झकझोर दिया। असल में महावीर और बुद्ध इन दोनो महात्माओं ने समाज में क्रान्ति उत्पन्न की तथा हिन्दू समाज में मनुष्य–मनुष्य के बीच समानता का भाव पहले–पहल बुद्ध और महावीर ने ही फैलाया। जैन धर्म ने शिक्षा दी कि कर्म से व्यक्ति महान बनता है, जाति से नही, महावीर स्वामी लिंग भेद को नहीं मानते थे। उन्होंने कहा कि समाज में जिस पुरूष को अधिकार है, उस क्षेत्र में नारी भी बराबर की हिस्सेदार है। उन्होने कहा कि किसी को दास बनाना, पराधीन करना, शारीरिक और मानसिक सन्ताप देना, शोषण करना आदि अमानुषिक कृत्य हैः

प्राचीन भारत में मनुष्य के मूलभूत हितों को महत्व दिया जाता था और राजा का मुख्य कार्य इन हितों का संरक्षण करना माना जाता था। प्राचीन भारतीय विचारक कौटिल्य का कहना था **''प्रजा के सुख में राजा का सुख है प्रजा के हित में राजा का हित है। राजा के लिये प्रजा के सुख से भिन्न अपना कोई सुख नहीं है प्रजा के सुख में ही उसका सुख है।** प्राचीन भारत के कलिंग अभिलेख से स्पष्ट होता है कि सम्राट अशोक अपनी प्रजा को सन्तान की तरह मानता था उसने अधिकारियों को प्रजा पर अत्याचार न करने की चेतावनी दी थी। प्राचीन भारत में प्रजा के हित को सर्वोपरी माना जाता था। महाभारत के शान्तिपर्व में शासक के आचरण एवं राजत्व के सिद्धान्त में इसी भावना को उजागर किया गया है। प्राचीन काल के बाद मध्यकाल आता है। प्राचीनकाल में भी मानवीय अधिकारों के उल्लंघन की घटनयें होती थी लेकिन वे उतनी व्यापक नहीं थी। जितने मध्यकाल के इतिहास में देखने को मिलती है। मध्यकाल में जाति प्रथा, छुवा–छूत, प्रर्दा प्रथा, बहुविवाह, सति प्रथा, बाल हत्या, विधवा विवाह निषेध आदि कुरीतियों के कारण मानव अधिकारों पर सर्वाधिक दुष्प्रभाव पड़ा। लेकिन प्रतिकूल माहौल में भी मध्यकाल में मानव अधिकार किसी न किसी रूप में विघमान थे। '' मुगल सम्राट अकबर और जहांगीर की न्याय प्रियता दूर–दूर तक बिख्यात थी। ये दोनो मुगल शासक प्रजा के मानवधिकारों के प्रति काफी सजग रहते थे। सम्राट अकबर ने अपनी धार्मिक नीति **दीन–ए–इलाही के द्वारा प्रजा को धर्मिक सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया।**

मध्यकाल में एक महत्वपूर्ण आन्दोलन हुआ जिसे भक्ति आन्दोलन के नाम से जाना जाता है। भक्ति आन्दोलन एक ब्यापक आन्दोलन था जिसमे सारा जोर मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों पर था। सभी प्रकार के भेद–भावों को भूलकर प्रेम और सहयोग को प्रेरित करना भक्ति आन्दोलन का मुख्य उदेश्य था। मध्यकाल के पश्चात आधूनिक काल में आम जनता के मानवाधिकारों को नई ऊँचाइयॉ प्राप्त हुई। इस काल में मानवीय अधिकारों का हनन करने वाली विभिन्न सामाजिक कुरीतियों जैसे बाल विवाह, सति प्रथा, बहु पत्नी प्रथा, जाति प्रथा, अस्पृष्यता आदि के विरूद्ध जबरदस्त आन्दोजन उत्पन्न हुआ। इस काल में स्वामी दया नन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द केशव चन्द्र सेन, ज्योतिबा फुले आदि समाज सुधारकों एवं धर्म सुधारकों में जनता को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मानवाधिकारों के बारे जानकारी प्रदान की। स्वाधीनता संघर्ष काल में लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य की मांग करते हुए कहा था कि स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मै इसे लेकर रहुंगा। **तिलक ने स्वराज्य को एक राजनीतिक आवश्यकता ही नहीं बताया अपितु नैतिक आधार पर इसका समर्थन किया।** स्वराज्य की धारणा को तिलक के प्राकृतिक सिद्धान्तों पर आधारित किया। उन्होंने माना कि स्वराज्य व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार है और अंग्रेजों द्वारा भारत पर अधिकार जमाये रखना एक असहनीय ज्यादती है। यह भारतीयों का कर्तव्य है कि वे स्वराज्य की प्राप्ति के लिए संघर्ष करें। लाला लाजपतराय का कहना था कि स्वतंत्रता के अभाव में

जीवन का कोई मूल्य नहीं है और स्वराज्य की प्राप्ति के बिना को स्वतंत्रता हो नही सकती। विपिन चन्द्रपाल ने प्राकृतिक अधिकारों का समर्थन किया उनका मानना था कि प्राकृतिक अधिकार वे मूल अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही नीहित है। उनका कहना था 'ये मूल प्राकृतिक अधिकार संविधानिक अधिकार नहीं है और ना इनकी किसी ने सृष्टि की है बल्कि वे ऐसे अधिकार हैं जिन्होंने सरकारों को जन्म दिया है। वस्तुतः ब्रिटिश शासन के अधीन भारतीयों के ना तो कोई अधिकार थे और ना ही कोई स्वतंत्रता। भारतीयों को अपने ही देश में अमानवीय एवं भेदभाव पूर्ण व्यवहार सहन करना पड़ता था। इसी कारण भारत में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन उत्पन्न हुआ। जिसके प्रारम्भिक काल में भारतीयों को मूलभूत अधिकार प्रदान किये जाने की मांग उठाई गई लेकिन ब्रिटिश शासकों ने इन मांगो को निर्दयता पूर्वक दबाने का प्रयत्न किया जिसके परिणाम स्वरूप मानवीय स्वतंत्रता एवं अधिकारों की मांग तीब्र हो गई। 1918 में बम्बई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया गया जिसमें यह मांग की गई कि ब्रिटिश सरकार भारत बिल मे भारतीयों को भी ब्रिटिश नागरिकों के समान ही अधिकार प्रदान करने की घोषणा करें। दिसम्बर 1918 में ही कांग्रेस के अधिवेशन में प्रास्ताव पारित करके आत्म निर्णय का अधिकार एवं अन्य अधिकारों की मांग की गई। 1925 में पुनः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अधिकारों के मांग पत्र की घोषणा की। 1927 में भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस द्वारा अपने मद्रास के अधिवेशन में यह मांग की गई कि किसी भी भावी संविधान भारत के सविधान में मौलिक घोषणा होनी चाहिए। 1928 में भारतीय संविधान के सिद्वान्तों का प्रारूप तैयार करने के लिए पण्डित मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया था। समिति ने अपनी रिपोर्ट में नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान किये जाने की सिफारिश की तथा विधि के समक्ष समानता, स्वतंत्रता, सम्पत्ति, निशुल्क प्राथमिक शिक्षा, धर्मिक स्वतंत्रता आदि 19 अधिकारों की सूचि भी प्रस्तुत की। 1929–30 में पण्डित जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में काग्रेस के लाहौर अधिवेशन में प्रस्ताव पारित करके कहा गया कि भारत के लोगों को अन्य राष्ट्रों की भांति स्वतंत्रता और जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधाएं प्राप्त करने का अधिकार है। 1931 में कांग्रेस का करांची अधिवेशन सम्पन्न हुआ जिसमें पुनः एक बार मौलिक अधिकारों एवं सामाजिक परिवर्तन की मांग की गई। 1944–45 सर्वदलीय सम्मेलन के द्वारा सप्रू कमेटी का गठन किया गया जिसने मौलिक अधिकारों को लेखबद्ध किया। 16 मई 1946 को कैबिनेट मिशन द्वारा अपने वक्तव्य में कहा गया कि एक सलाहकार समीति का गठन किया जायेगा जो कि नागरिकों के अधिकारों, अल्पसंख्यकों तथा अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के हितो को ध्यान मे रखेगी। भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में सदैव शोषण का विरोध किया और इसी के साथ पग–पग पर उसने मानवाधिकारों के पक्ष मे आवाज बुलन्द की। भारतीय स्वाधीनता संघर्श के काल मे ही भारत में मानव अधिकारों की मांग होने लगी थी। 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वाधीनता की प्राप्ती हुइ। 26 नवम्बर 1949 को भारत का संविधान बनकर तैयार हुआ जिसमें मौलिक अधिकारों के रूप में प्रमुख मानवीय अधिकारों को संविधान में स्थान दिया गया और उनके संरक्षण की व्यवस्था की गई। अति प्राचीन काल से ही भारतीय चिन्तर में मानव अधिकारों की जो सनातन परम्परा रही है, उसने भारतीय संविधान में मूर्तरूप प्राप्त किया।

मानव अधिकारों से सम्बन्धित मुख्य चुनौतियॉ और उनका समाधान

मानवीय अधिकारों के संरक्षण एवं सम्बर्द्धन के लिये अन्तराष्ट्रीय स्तर पर अब तक अनेक विधिक तथा प्रीाावी प्रयास किये गये है। संयुक्त राष्ट्र के अस्तित्व में आने के बाद मानवीय अधिकारों

की सुरक्षा के प्रयासों में तीव्रता आयी है। परन्तु अन्तराष्ट्रीय प्रयासों एवं राष्ट्रीय स्तर पर लोगों के मानवीय अधिकारो का हनन हो रहा है अथवा मानव अधिकारों की सुरक्षा बहुत बड़ी चुनौती बनी हुई है। सैद्धान्तिक रूप से सभी राज्यों की सरकारें एवं विश्व का आम जनमानस इस बात पर सहमत है कि विश्व के सभी मनुष्यों के मानवीय अधिकारों की समुचित सुरक्षा होनी चाहिये, लेकिन फिर भी विश्व भर में मानव अधिकारों के लिये अनेक चुनौतियॉ बनी हुई है।

मानव अधिकार से सम्बन्धित चुनौतियॉ

मानव अधिकारों के बारे में समुचित जागरूकता का अभाव – मानवीय अधिकारों के संरक्षण के लिए यह जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने मानवीय अधिकारों के बारे में पर्याप्त जानकारी हो। क्योंकि जब तक प्रत्येक व्यक्ति को अपने मानव अधिकारों के बारे में सम्यक् जानकारी नहीं होगी अथवा जब तक उसे मानव अधिकारों के महत्व का पता नहीं होगा तब तक वह अपने अधिकारों के प्रति सजग नहीं हो पायेग और सत्ताधारी या अन्य व्यक्ति उसके मानवीय अधिकारों का अतिक्रमण करते रहेंगे। **आतंकवाद की समस्या** – आतंकवाद किसी एक राष्ट्र विशेष की समस्या नहीं है बल्कि विश्वव्यापी समस्या है। विश्व के सभी राष्ट्रों के समक्ष आतंकवाद सबसे बड़ी चुनौती है। **युद्ध अथवा युद्ध की संभावना–** शान्तिपूर्ण व्यवस्था और समाज में मानव अधिकारों का पोषण एवं सम्बर्द्धन हो सकता है। जो देश युद्ध ग्रस्त अथवा युद्ध संलग्न रहता है, वहां मानव अधिकारों को संरक्षण नहीं हो सकता। **सामजिक भेदभाव अथवा सामाजिक विशमता–** समाजिक भेदभाव अथवा सामाजिक विषमता मानवीय अधिकारों के संरक्षण में बांधक है। मानवीय अधिकारों का सम्बर्द्धन उसी समाज में हो सकता है, जहां सामाजिक भेदभाव अथवा सामाजिक कुरीतियां न हो। **भाषावाद और क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति**–कुछ विशेष प्रकार की संकीर्णतायें मानव अधिकारों के पोषण में बाधक है। ऐसी संकीर्ण प्रवृतियों में भाषावाद और क्षेत्रवाद की प्रवृति मुख्य हैं। भाषावाद और क्षेत्रवाद की प्रवृतियॉ विभाजनकारी होती हैं। इनसे प्रेरित होकर व्यक्ति दूसरी भाषा बोलने वालों से अथवा दूसरे क्षेत्र के लोगों से घृणा करने लगता है। **धार्मिक कट्टरता एवं साम्प्रदायिकता की प्रवृति–** धार्मिक कट्टरता एवं साम्प्रदायिकता की प्रवृति के कारण समाज में घृणा एवं विद्वेश के वातावरण का निर्माण होता है। इन प्रवृतियों के वशीभूत होकर व्यक्ति दूसरे धर्म एवं सम्प्रदाय के लोगों से द्वेश करने लगता है। **निर्धनता और बेरोजगारी–**कतिपय आर्थिक और सामजिक समस्यायें मानव अधिकारों के मार्ग में बडी बाधायें है। ऐसी समस्याओं में निर्धनता और बेरोजगारी की समस्यायें मुख्य हैं। ये समस्यायें मनुष्य के मूलभूत अधिकार जीवन के अधिकार जीवन के अधिकार को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। **अशिक्षा एवं अज्ञानता–**मानवीय अधिकारों के सम्बर्द्धन एवं संरक्षण में एक अन्य बाधा अशिक्षा एवं अज्ञानता है। सामान्यता शिक्षित व्यक्ति को अपने अधिकारों के बारे में जानकारी होती है अथवा वह अपने अधिकारों के प्रति सजग रहता है। **अधिनायकवादी तथा साम्राज्यवादी विचारधारा–** कुछ विचारधारायें अतीत में मानवीय अधिकारों के लिये बडी चुनौतियां रही है। ऐसी विचारधाराओं में अधिनायकवादी, साम्राज्यवादी, फांसीवादी, निरंकुशवादी विचारधारायें आदि प्रमुख है। इतिहास साक्षी है कि अतीत में इन विचारधाराओं के कारण मानव अधिकारों का व्यापक रूप से शोषण हुआ। **दुर्बल समूहों के मानवीय अधिकारों के संरक्षण की चुनौती–** समाज में कुछ दुर्बल समूह पाये जाते है, जिनके मानवीय अधिकारों का संरक्षण सम्पूर्ण समाज तथा राजनीतिक व्यवस्था के लिये हमेशा बडी चुनौती होते है। यद्यपि इन सभी वर्गो के मानव अधिकारों के संरक्षण के लिये अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किये जाते

रहे है, फिर भी इनके अधिकारों का उल्लंघन होता रहता है। अतः इन वर्गो के मानवीय अधिकारों को संरक्षण प्रदान करना राजनीतिक व्यवस्था के लिये चुनौतीपूर्ण कार्य है। **जनखंख्या वृद्धि की समस्या–**जनसंख्या में अनियन्त्रित वृद्धि के कारण भी मानवीय अधिकारों के लिये चुनौती उत्पन्न होती है। क्योकि जनसंख्या में अनियन्त्रित वृद्धि के कारण अनेक लोगों की न्यूनतम भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती। बढी हुई जनसंख्या के कारण सुरक्षा की समस्या भी उत्पन्न होती है। **प्राकृतिक प्रकोप तथा महामारी के प्रसार की समस्या** –मनव अधिकारों के लिए उपरोक्त वर्णित कारण ही चुनौतियों के रूप में नहीं हैं, वरन् कई बार मानवीय अधिकार प्राकृतिक आपदाओं अथवा महामारी के प्रसार से भी व्यापक रूप से प्रभावित होते हैं। बाढ, भूकम्प, ज्वालामुखी विस्फोट, भूस्खलन, दावाग्नि, बादल फटने, आकाशीय बिजली गिरने आदि प्राकृतिक आपदाओं से मनुष्य के जीवन के अधिकार पर सर्वाधिक दुष्प्रभाव पढता है। प्राकृतिक आपदाओं और महामारी से केवल मनुष्य के मूलभूत जीवन का अधिकार ही प्रभावित नहीं होता, बल्कि उसके अन्य सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक अधिकार भी इन घटनाओं से अत्यधिक प्रभावित होते है।

मानव अधिकारों से सम्बन्धित चुनौतियों का समाधान

मानव अधिकार सभी मनुष्यों को मनुष्य होने के नाते समान रूप से प्राप्त होते है। किन्तु कुछ चुनौतियों तथा समस्याओं के कारण सभी उनका समान रूप से उपभोग नहीं कर पाते। अतः मानव अधिकारों से सम्बन्धित चुनौतियों तथा समस्याओं को न केवल समझा जाना आवश्यक है बल्कि उनके निराकरण के लिये ठोस तथा प्रभावी कदमों को उठाये जाने की भी आवश्यकता है। निम्नलिखित सुझावों को ध्यान में रखकर मानव अधिकार से सम्बन्धित चुनौतियो का काफी हद तक समाधान किया जा सकता है–

मनवीय अधिकारों के प्रति आम लोगों में जागरूकता उत्पन्न करने के लिये समय–समय पर समाज में कार्यशालाओं एवं शिविरों को आयोजित करना। मानव अधिकार शिक्षा को प्राथमिकता प्रदान करना। सभी राष्ट्रों द्वारा आतंकवाद को रोकने के लिए अपने राष्ट्रीय स्तर पर अथवा अन्य राष्ट्रों के साथ मिलकर संयुक्त एवं प्रभावी प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। धार्मिक कट्टरता अथवा साम्प्रदायिकता की प्रवृति को हतोत्साहित करने के लिये व्यापक प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। स्वयंसेवी संस्थाओं एवं नागरिक संगठनों को मानव अधिकारों के संरक्षण एवं सम्बर्द्धन हेतु प्रेरित करना। संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों के बारे में शिक्षण संस्थाओं में कार्यशालाओं को आयोजित करवाना। जतिवाद, क्षेत्रवाद, भाशावाद आदि प्रवृतियों के विरूद्ध लोगों में जागरूकता उत्पन्न करना। सभी व्यक्तियों के मानवीय अधिकारों के संरक्षण की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र एवं विभिन्न मानव अधिकार संस्थाओं को सभी राष्ट्रों द्वारा पूरा–पूरा सहयोग प्रदान करने हेतु प्रेरित किये जाने की आवश्यकता है। नस्लवाद अथवा नस्लीय भेदभाव को पनपने अथवा प्रसारित होने से रोकना। सभी राष्ट्रों को संयुक्त राष्ट्र चार्टर में सुझाये गये उपायों के अनुसार अपने अन्तराष्ट्रीय मतभेदों के समाधान हेतु प्रेरित किये जाने की आवश्यकता है। मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु अन्तराष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर उन सभी उपायों को मूर्त रूप दिये जाने की आवश्यकता जो देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार आवश्यक तथा वांछनीय प्रतीत हो। दुर्बल समूहों यथा महिलाओं, बच्चों, वृद्धों, दिव्यांगों, अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्प संख्यकों के मानव अधिकारों की सुरक्षा पर विशेष ध्यान देना। पुलिस, अर्द्ध सैनिक बल अथवा सुरक्षा कर्मियों को मानव अधिकारों के प्रति जागरूक व सचेत बनाये

जाने की आवश्यकता है। लोकतांत्रिक विचारों तथा लोकतांत्रिक संस्थाओं को मजबूती प्रदान करना। क्योंकि लोकतंत्र में मानव अधिकारों के संरक्षण के पर्याप्त अवसर होते है। मानवीय अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए विभिन्न अन्तराष्ट्रीय अभिसमयों, सम्मेलनों, घोषणाओं तथा अपने राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न देशों द्वारा समय–समय पर जो प्रावधान किये गये हैं, ईमानदारी से उनका क्रियान्वयन सुनिश्चित किया जाना भी आवश्यक है। प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के लिए ठोस कार्यनीति का निर्धारण किया जाना चाहिए तथा प्राकृतिक आपदा की स्थिति में आपदा प्रबधन की उचित व्यवस्था होनी चाहिए जिससे कि राहत एवं बचास का कार्य प्रभावी ढंग से किया जा सके।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मानव अधिकारों से सम्बन्धित अनेक चुनौतियां तथा समस्याएं हैं, जिनके कारण मानवीय अधिकारों का हनन अथवा अतिक्रमण होता है। मानव अधिकारों की चुनौतियां विविध हैं, तो उनके निराकरण के भी विविध उपाय है। इन उपायों का यदि ईमानदारी तथा निश्ठा से क्रियान्वयन किया जाता है, तो मानव अधिकारों के उल्लंघन को बड़ी सीमा तक रोका जा सकता है तथा ऐसे वातावरण का सष्जन किया जा सकता है जहां सभी के मानव अधिकार सुरक्षित हों और सभी मनुष्य अपने मानवीय अधिकारों का समुचित रूप से उपयोग कर सके। मानवधिकारों का मानव के जीवन में महत्वपूर्ण योगदान है। सम्भवतः व्यक्ति परिवार, समुदाय, समाज, राज्य, राष्ट्र व अन्तराष्टीय राज्यों का सामूहिक दायित्व मानव अधिकारों के उपयोग व संरक्षण का दायित्व ईमानदारी से पूर्ण करे तो सम्भवतः मानव अधिकारों को उनका मौलिक स्वरूप प्राप्त हो सकता है, किन्तु प्रत्येक स्तर पर स्वहित, संघर्ष व शक्ति प्रयोग की अवधारणायें इसके मार्ग में वाधा उत्पन्न करती हैं तथा हब्स व मैकियावली के मानव स्वभाव का चित्र स्वतः ही मन मसतिस्क में अंकित हो जाता है।

सन्दर्भ सूचि

1. एच0 ओ0 अग्रवाल, अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं मानव अधिकार दशम संस्करण 2018।
2. संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकारों की सर्वभौमिक घोषणा 1948 प्रस्तावना।
3. रामानन्द गैरोला, अन्तर्राष्ट्रीय विधि एवं मानव अधिकार प्रकाश बुक डिपो बरेली।
4. कौटियल्य, अर्थशास्त्र 3/1
5. ऋगवेद 10/90/1
6. यजुर्वेद 36/18
7. ऋगवेद 10/191/4
8. आर0 पी0 जोशी, मानव अधिकार एवं कर्तव्य
9. मधुसूदन त्रिपाठी, भारत मे मानवाधिकार
10. मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 की प्रस्तावना